LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

गीता परिवार
|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 9: राजविद्याराजगुह्ययोग

1/3 (श्लोक 1-10), शनिवार, 04 अक्टूबर 2025

विवेचक: SENIOR TRAINER □ R□ VALIVETI VENKATA LAKSHMI NARAYANA SARMA

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/2MTncOgSHOw

मोक्ष प्राप्ति का मार्ग

देश भक्ति गीत, भजन, हनुमान चालीसा, वैदिक सनातन धर्म का पालन करते हुए दीप प्रज्वलन तथा गुरु वन्दना और प्रारम्भिक प्रार्थना के साथ आज के सत्र का आरम्भ हुआ।

आज हम नवें अध्याय का विवेचन आरम्भ कर रहे हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में कुल अट्ठारह अध्याय हैं। यह नवाँ अध्याय श्रीमद्भगवद्गीता के मध्य में आता है। इसका महत्व बहुत अधिक है। ज्ञानेश्वर महाराज समाधि के समय इसी अध्याय को खोलकर समाधि में लीन हुए थे। इस अध्याय में श्रीभगवान् अपने तत्त्व रूप को व्यक्त करते हैं। प्रकृति क्या है, पुरुष क्या है, इसका अस्तित्व क्या है, इन सभी पर प्रकाश डालते हैं।

ज्ञान और विज्ञान के विषय में बताते हैं। सातवें अध्याय में श्रीभगवान् ने अर्जुन को ज्ञान-विज्ञान के विषय में बताया था। अर्जुन ने आठवें अध्याय में श्रीभगवान् से कुल सात प्रश्न पूछे थे- अध्यात्म क्या है? आदि दैव क्या है? इत्यादि।

पहले छः प्रश्नों के उत्तर अर्जुन को मिल गए थे। इसे ही श्रीभगवान् आगे बढ़ाते हैं। श्रीभगवान् ज्ञान तथा विज्ञान के विषय में अपने भाव व्यक्त करने के लिए इस अध्याय का आरम्भ करते हैं। इस अध्याय का नाम ही **राजविद्याराजगुह्ययोग है।** विद्या का अर्थ हम सभी जानते हैं और विद्या में भी जो सर्वोत्तम विद्या है, उसे राजविद्या कहा गया।

इसी प्रकार राजगुह्य का अर्थ भी अत्यन्त गुह्य या अत्यधिक रहस्यमय है। इसलिए इन दोनों बातों के विषय में श्रीभगवान् ने यहाँ बताना आरम्भ किया।

9.1

श्रीभगवानुवाच

इदं(न्) तु ते गुह्यतमं(म्), प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं(वँ) विज्ञानसहितं(यँ), यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥9.1॥

श्रीभगवान् बोले -- यह अत्यन्त गोपनीय विज्ञान सहित ज्ञान दोष दृष्टि रहित तेरे लिये तो (मैं फिर) अच्छी तरह से कहूँगा, जिसको जानकर (तू) अशुभ से अर्थात् जन्म-मरण रूप संसार से मुक्त हो जायगा।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, "मैं यह विज्ञान सहित ज्ञान, यह परम गोपनीय ज्ञान बता रहा हूँ।' **प्रवक्ष्यामि** अर्थात विस्तार पूर्वक बोलता हूँ। यह ऊपर-ऊपर की बातें नहीं हैं। इसमें प्र उपसर्ग जुड़ा है इसका अर्थ है इसमें जो गूढ़ रहस्य है, वह मैं तुम्हें बता रहा हूँ।

प्र + वक्ष्यामि= प्रवक्ष्यामि

श्रीभगवान् यहाँ अर्जुन को अनसूय कह रहे हैं। अनसूय का अर्थ है जो किसी से द्वेष भाव नहीं रखता है। उसे अनसूय कहते हैं। श्रीमद्भवद्गीता में अर्जुन को पच्चीस नामों से पुकारा गया है। उनमें से एक नाम अनसूय है। यह सम्बोधन बहुत विशिष्ट है। यह हर व्यक्ति के लिए नहीं हो सकता।

अत्रिस्मृति में एक श्लोक आता है जिसमें अनसूय के तीन लक्षण बताए गए हैं।

"न गुणान् गुणिनो हन्ति स्तौति मन्द गुणानपि।
न अन्य दोषेस्तु रमते, साऽनसूय प्रकीर्तित: ।।

अनसूय दूसरों में अवगुण नहीं ढूँढते। अनसूय लोग हर प्राणी में कोई न कोई गुण ही देखते हैं, दूसरे के दोषो में आनन्द नहीं लेते हैं।

हम लोग क्या करते हैं? दूसरों में अवगुण ढूँढते रहते हैं। हमारे मन की इस प्रकार की प्रवृत्ति होती है लेकिन अनसूय के मन में कभी इस प्रकार की प्रवृत्ति नहीं आती। यह उनका पहला गुण है।

दूसरा लक्षण है- कम जानने वाले, अयोग्य व्यक्तियों की भी वह स्तुति करता है। वह हर प्राणी में कोई न कोई गुण ढूंढ लेता है। बुरे व्यक्तियों में भी कोई न कोई गुण होता है। वह बुरे व्यक्ति में भी अच्छा ही ढूँढता है।
वह मन्दबुद्धि में भी अच्छाई ही ढूँढता है।

अनसूय का तीसरा लक्षण है- वह अन्य व्यक्तियों के दोषों में रमता नहीं है।
कोई दूसरा व्यक्ति किसी के विषय में कुछ बुरा बोलता है तो हम उसमें आनन्द लेते हैं और अपने बारे में अगर कोई कुछ कहता है तो हमें उससे दु:ख प्राप्त होता है।

ऐसे तीन गुणों वाले जो व्यक्ति हैं उन्हें अनसूय कहा गया है। इसलिए श्रीभगवान् ने अर्जुन को निमित्त बनाकर मानवमात्र के कल्याण के लिए गीताजी का उपदेश एक गीत के रूप में प्रस्तुत किया। निमित्त बनने के लिए भी योग्यता चाहिए तो वह योग्यता अर्जुन में है। इसलिए उन्हें अनसूय कहा गया।

ज्ञान तथा विज्ञान के विषय में अनेक सन्तों, महात्माओं ने बहुत विस्तारित व्याख्या की है । जैसे, हम गीता परिवार में श्रीमद्भगवद्गीता पढ़ रहे हैं तो यह ज्ञान है। हमारे प्रशिक्षक हमें पढ़ाते हैं, हमें ज्ञान प्राप्त होता है, हम कुछ सुनते हैं या कुछ देखते हैं तो उससे हमें ज्ञान प्राप्त होता है किन्तु यह ज्ञान हमारे मोक्ष के लिए कारण नहीं बनेगा। यह एक सीढ़ी बन सकता है।

इसी ज्ञान के माध्यम से हमें मोक्ष प्राप्त होगा। वह एक सिद्धि मन्त्र है। जब तक हम उस ज्ञान को विज्ञान में रूपान्तरित नहीं करेंगे तब तक हमें मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी। हमें उसे ज्ञान को विज्ञान में परिवर्तित करना ही होगा तभी मोक्ष की प्राप्ति होगी। ज्ञान को अनुभव पूर्वक जब तक नहीं जान लेंगे तब तक वह विज्ञान नहीं बनेगा। जब तक हम इसे स्वयं में अनुभव नहीं करते हैं, अपने जीवन में नहीं उतारते हैं, तब तक यह विज्ञान नहीं कहलाता।

गीता परिवार का ध्येय वाक्य भी यही है- गीता पढ़ें, पढ़ाएँ, जीवन में लाएँ।
इसका अर्थ है ज्ञान को विज्ञान में बदलो तभी मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिए यहाँ ज्ञान विज्ञान की बात कही गई है।

मान लीजिए, हमें किसी ने एक सेब दिखाया और बताया कि यह बहुत अच्छा होता है, मीठा होता है, इसका रङ्ग लाल होता है। यह ज्ञान है। यह ज्ञान तो हमें प्राप्त हो गया लेकिन जब तक हम उसे चखकर नहीं देखेंगे, उसका स्वाद स्वयं नहीं अनुभव करेंगे, तब तक हमें वास्तव में पता नहीं चलेगा कि सेब का स्वाद कैसा होता है? जब हम उसको चखकर उसका स्वाद महसूस करेंगे, तभी हम दूसरे व्यक्ति को बता सकते हैं कि हाँ! यह स्वादिष्ट है, यह मीठा है।

यह विज्ञान है। इसीलिए गुरु महात्मा हमें ज्ञान को विज्ञान में व्यवस्थित होना सिखाते हैं। करना तो हमें ही है।

इसमें श्रीभगवान् अपने तत्त्व के बारे में बता रहे हैं, इसलिए यह गुह्यतम शास्त्र है। ज्ञान को समझने के लिए हमारी मानसिक स्थिति भी उस प्रकार की होनी चाहिए। यदि मैं प्रथम कक्षा में हूँ और मुझे कोई बड़ी कक्षा का ज्ञान दिया जाए तो मुझे कुछ भी समझ में नहीं आएगा। वह मेरे लिए गुह्य होगा, रहस्यमय होगा क्योंकि उस समय मेरी स्थिति उस प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने की नहीं है। ऐसे व्यक्तियों के लिए वह गुह्य है और गुह्यतम का अर्थ अत्यन्त गोपनीय।

श्रीभगवान् को प्राप्त करने के तीन मार्ग होते हैं। इसमें हम **कर्ममार्ग को गुह्य** (secretive) कह सकते हैं, **ज्ञानमार्ग को** गुह्यतर (more secretive) कह सकते हैं और तीसरा **भक्तियोग** का मार्ग, उसे हम गुह्यतम (most secretive) कह सकते हैं। जब यह दोनों भक्तियोग में मिल जाते हैं तब उसमें दो नहीं रह जाते। उसमें केवल एक का ही स्थान होता है। श्रीभगवान् और भक्त के एक होने पर ही व्यक्ति उस भक्तिमार्ग में प्रवेश कर सकता है।

श्रीभगवान् इसके विषय में बताने जा रहे हैं कि भक्ति क्या होती है, श्रद्धा क्या होती है, अश्रद्धा क्या होती है। श्रीभगवान् कहते हैं कि एक बार यह सब जानने के बाद क्या होता है?
अशुभ का अर्थ होता है जो प्रतिदिन परिवर्तित होता रहता है। यह संसार दुःखालय और अशाश्वत है। हम जन्म लेते हैं, फिर थोड़ा बड़े होते हैं, फिर मृत्यु, फिर जन्म, फिर मृत्यु। इसी चक्र में इस मृत्युलोक में हम घूमते रहते हैं। इसीलिए इसको अशुभ कहा गया है। इस मृत्युलोक में मोक्ष कैसे प्राप्त करेंगे? इस ज्ञान-विज्ञान रूपी ज्ञान प्राप्त करने के बाद इस जगत से मुक्त हो जाएँगे।

श्रीभगवान् इस लोक से मोक्ष प्राप्त करने का मार्ग बताते हैं। श्रीभगवान् कहते हैं "यह जानने के बाद तुम मोक्ष को प्राप्त कर लोगे अर्थात् तुम मुझ में प्रवेश कर जाओगे और परमधाम के लिए तैयारी शुरू हो जाएगी।

आगे श्रीभगवान् ज्ञान के लक्षण बताने वाले हैं।

9.2

राजविद्या राजगुह्यं(म्), पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं(न्) धर्म्यं(म्), सुसुखं(ङ्) कर्तुमव्ययम्।।9.2।।

यह (विज्ञान सहित ज्ञान अर्थात् समग्र रूप) सम्पूर्ण विद्याओं का राजा (और) सम्पूर्ण गोपनीयों का राजा है। यह अति पवित्र (तथा) अतिश्रेष्ठ है (और) इसका फल भी प्रत्यक्ष है। यह धर्ममय है, अविनाशी है (और) करने में बहुत सुगम है अर्थात् इसको प्राप्त करना बहुत सुगम है।

विवेचन- यह ज्ञान विद्याओं का राजा है, सर्वोपरि है। स्वयं के बारे में जानना, आत्मा के बारे में जानना, आध्यात्म के बारे में जानना, यह राजविद्या है। यह रहस्यों का भी रहस्य है, पवित्र भी है, मन को पवित्र करता है।

जल तो सभी शुद्ध होता है लेकिन गङ्गाजल पवित्र होता है। यह विद्या उत्तम भी है। प्रत्यक्ष रूप से इसके सुख का अनुभव कर

सकते हैं या प्राप्त कर सकते हैं। यह धर्मयुक्त है। किसी से अपेक्षा रहेगी ही नहीं, इसलिए इसमें सुख ही सुख है।

जैसे चार प्रकार के आश्रम हैं- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, संन्यास और वानप्रस्थ। वर्ण व्यवस्था भी चार प्रकार की है- ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय और शूद्र। जो भी कार्य हम हमारे वर्ण-आश्रम के अनुसार करेंगे तो वह धर्मयुक्त होगा। अभ्यास करना बहुत सुलभ और सरल है। हमें कोई वेद पढ़ने की, जप करने की, या तपस्या करने की आवश्यकता नहीं है।

भक्ति मार्ग सबसे सरल है। जो भी कार्य करें, श्रीभगवान् को अर्पण करते हुए करें। श्रीभगवान् हमारे बहुत निकट हैं।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।।15.7।।

उन्हें प्राप्त करने के लिए अभ्यास करना है। अव्यय अर्थात जो कभी व्यय नहीं होता, अक्षर अर्थात जिसका कभी क्षय नहीं होता। परमात्मा परिपूर्ण हैं।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

पूर्ण में से हम कुछ भी ले लें, तब भी वह पूर्ण ही रहेगा। न उनका जन्म होता है, न उनका अन्त होता है। वह अनन्त, अनादि है।

तो यह प्रश्न उठता है कि यदि यह ज्ञान इतना सरल है तो हर व्यक्ति क्यों नहीं प्राप्त कर सकता?

9.3

अश्रद्दधानाः(फ्) पुरुषा, धर्मस्यास्य परन्तप।
अप्राप्य मां(न्) निवर्तन्ते, मृत्युसंसारवर्त्मनि।।9.3।।

हे परंतप! इस धर्म की महिमा पर श्रद्धा न रखने वाले मनुष्य मुझे प्राप्त न होकर मृत्युरूप संसार के मार्ग में लौटते रहते हैं अर्थात् बार-बार जन्मते-मरते रहते हैं।

विवेचन - मानव या मनुष्य अश्रद्धा में इसलिए रहता है क्योंकि वह मानता है कि यह जगत ही सब कुछ है। तीन प्रकार के दोष बताए गए हैं। एक मन का दोष, अन्तकरण दूषित होना। विक्षेप, अर्थात् मन का विचलित भाव कभी यह करें कभी वह करें, चञ्चलता मन की प्रवृत्ति है।

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।6·34।।

आवरण अर्थात् ढका रहना, अविद्या के कारण विद्या ढकी रहती है, जिस प्रकार शीशा/दर्पण पर धूल जमी होने के कारण हम अपने चेहरे को स्पष्ट रूप से नहीं देख पाते। हमारे मन में, हृदय में परमात्मा हैं, पर हम अपने मन के ऊपर अविद्या या अज्ञान का आवरण होने के कारण परमात्मा को नहीं देख पाते। हमारे जो अवगुण हैं, या हममें जो दोष हैं, वे हैं काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर, अङ्हकार।

श्रीभगवान् यहाँ पर अर्जुन को **परन्तप** कहकर सम्बोधित करते हैं क्योंकि अर्जुन के समान तप करने वाला कोई नहीं है। तप का अर्थ होता है,जब हम कोई कार्य करते हैं और उसे करने में कितनी भी कठिनाई आ जाए हमें वह कार्य करना ही है, उसे तप कहते हैं। अर्जुन ने छः महीने तक निद्रा का त्याग करके धनुष विद्या सीखी इसलिए वे परन्तप कहलाए। अर्जुन कभी कोई युद्ध नहीं हारे।

अश्रद्धा, अविद्या के कारण साधारण मनुष्य मुझे प्राप्त नहीं कर पाते और बार-बार इस संसार में आते-जाते रहते हैं अर्थात् बार-बार जन्म लेते हैं और बार-बार मृत्यु को प्राप्त होते हैं। इन तीन श्लोकों में श्रीभगवान् ने ज्ञान के बारे में बताया है और अब अगले श्लोक में विज्ञान के बारे में बताते हैं।

9.4

मया ततमिदं(म्) सर्वं(ञ्), जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि, न चाहं(न्) तेष्ववस्थितः।।9.4।।

यह सब संसार मेरे निराकार स्वरूप से व्याप्त है। सम्पूर्ण प्राणी मुझ में स्थित हैं; परन्तु मैं उनमें स्थित नहीं हूँ तथा (वे) प्राणी (भी) मुझ में स्थित नहीं हैं - मेरे इस ईश्वर-सम्बन्धी योग (सामर्थ्य) को देख ! सम्पूर्ण प्राणियों को उत्पन्न करने वाला और प्राणियों का धारण, भरण-पोषण करने वाला मेरा स्वरूप उन प्राणियों में स्थित नहीं है। (9.4-9.5)

विवेचन - श्रीभगवान् कहते हैं सारी सृष्टि में सारे/ जगत में मैं अव्यक्त रूप में स्थित हूँ।
वे इस सृष्टि का सृजन करते हैं, इसमें स्थित सभी चराचर जीवों की उत्पत्ति करते हैं, उनका भरण पोषण करते हैं उन सभी में श्रीभगवान् विद्यमान हैं परन्तु उनका स्वरूप उन प्राणियों में नहीं है।
श्रीभगवान् निराकार हैं।

9.5

न च मत्स्थानि भूतानि, पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो, ममात्मा भूतभावनः।।9.5।।

विवेचन- "सभी प्राणी मुझमें स्थित नहीं हैं, मेरे ऐश्वर्य योग को देखो। मैं भूतों का धारण-पोषण करने वाला हूँ, फिर भी मेरी आत्मा उनमें स्थित नहीं है।" इस कथन की व्याख्या करते हुए यह बताया गया है कि जहाँ एक ओर यह कहा जाता है कि सभी जीव ईश्वर में स्थित हैं क्योंकि श्रीभगवान् ने ही प्रकृति और यह पूरा जगत बनाया है और हम सब उन्हीं के द्वारा उत्पन्न हुए हैं।

वहीं दूसरी ओर श्रीभगवान् यह स्पष्ट करते हैं कि वे स्वयं हमारे अन्दर या इस जड़ प्रकृति में स्थित नहीं हैं। इसका कारण यह है कि प्रकृति नाशवान है और जड़ है, जबकि श्रीभगवान् सनातन और चेतना के स्रोत हैं; वे केवल अपनी शक्ति (प्रकृति) द्वारा सृष्टि का सञ्चालन करते हैं, लेकिन जड़ता उनका गुण नहीं है, इसलिए वे उसमें व्याप्त नहीं हैं। यह विरोधाभास (Contradiction) तब उत्पन्न होता है जब हम द्वैत (प्रकृति और पुरुष) को अलग दृष्टि से देखते हैं, लेकिन जब अद्वैत दृष्टि अपनाई जाती है- यह समझते हुए कि प्रकृति और पुरुष (श्रीभगवान्) दोनों वास्तव में एक ही सत्ता हैं, जैसे लहरें और समुद्र, तब यह विरोधाभास समाप्त हो जाता है, क्योंकि एक ही होने के कारण न पुरुष में प्रकृति है और न प्रकृति में पुरुष।

इस प्रकार, श्रीभगवान् अपनी अति-सूक्ष्म, अनादि और सनातन प्रकृति के कारण, जिसे केवल वह स्वयं ही वर्णित कर सकते हैं, इस दृश्यमान जगत के कण-कण को धारण करते हुए भी, स्वयं को उससे अलिप्त (detached) और ऊपर रखते हैं।

9.6

यथाकाशस्थितो नित्यं(वँ), वायुः(स्) सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि, मत्स्थानीत्युपधारय॥9.6॥

जैसे सब जगह विचरने वाली महान् वायु नित्य ही आकाश में स्थित रहती है, ऐसे ही सम्पूर्ण प्राणी मुझमें ही स्थित रहते हैं - ऐसा तुम मान लो।

विवेचन- "**मत्स्थानीत्युपधारय**" इसका सीधा अर्थ है: जानो (उपधारय)! यहाँ एक उपमा (simile) दी जा रही है- एक उपमा से तुलना की जा रही है। हमने आकाश के बारे में बात की है। जैसे महान वायु (जो सब जगह विचरण करती है) नित्य / सदैव आकाश में स्थित है, वैसे ही सभी प्राणी मुझमें (परमात्मा) स्थित हैं। वायु हमेशा आकाश में रहती है; बिना आकाश के उसका कोई अस्तित्व (existence) नहीं हो सकता। इसी प्रकार, श्रीभगवान् के बिना हमारा कोई अस्तित्व नहीं है, इसलिए श्रीभगवान् सभी में हैं।

वायु जैसे सर्वत्र आकाश में घूमती रहती है और आकाश तो शून्य है, जिसमें कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड समाए हुए हैं। उसी प्रकार हम सब भी श्रीभगवान् में हैं। हम पूरा जन्म-मरण (और जो कुछ भी होता है) अपने कर्मों और सञ्चित संस्कारों के अनुसार भोगते हैं, लेकिन हम हैं श्रीभगवान् के अन्दर ही। इसलिए, श्रीभगवान् के अन्दर हम सब घूमते रहते हैं, ठीक वैसे ही जैसे वायु आकाश में स्थित है। इसी बात को समझाने के लिए एक उदाहरण रूप में बताया गया है।

9.7

सर्वभूतानि कौन्तेय, प्रकृतिं(यँ) यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि, कल्पादौ विसृजाम्यहम्॥9.7॥

हे कुन्तीनन्दन ! कल्पों का क्षय होने पर (महाप्रलय के समय) सम्पूर्ण प्राणी मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं (और) कल्पों के आदि में (महासर्ग के समय) मैं फिर उनकी रचना करता हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, कि मैं अपनी प्रकृति को वश में (**अवष्टभ्य**) करके, इस सम्पूर्ण भूत समुदाय (**भूतग्राममिमं कृत्स्नम्)** की बार-बार सृष्टि/रचना (विसृजामि पुनः पुनः) करता हूँ। सृष्टि में जन्म लेना और मरना हमारे वश में नहीं है—यही (अवशम् **प्रकृतेर्वशात्)** का अर्थ है। चूँकि यह प्रकृति श्रीभगवान् के वश में है, इसलिए प्राणी का जीवन और मरण उसके अपने अधिकार में नहीं है। श्रीभगवान् कहते हैं, कि मैं अपनी शक्ति, अपनी प्रकृति को अपने नियन्त्रण (control) में लेता हूँ और उसे बार-बार रचता हूँ और फिर संहार करता हूँ।

यहाँ काल की बात आ गई है—कल्पक्षय, कल्प का अर्थ है ब्रह्मा जी का कालचक्र। जैसा कि हम जानते हैं, चार युग हैं: सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग, और कलियुग (जो अभी पाँच हज़ार एक सौ से अधिक वर्षों से चल रहा है)। कलियुग का कालमान चार लाख बत्तीस हज़ार मानव वर्ष है, और सतयुग इसका चार गुना अर्थात सत्रह लाख अट्ठाईस हज़ार वर्ष होता है। इन चारों युगों को मिलाकर एक महायुग बनता है। ऐसे एक सहस्त्र महायुग ब्रह्मा जी का एक दिन (बारह घण्टे) होता है। संख्या में यह (4.32 अरब) (4.32 बिलियन) वर्षों के बराबर है।

ब्रह्मा जी का एक दिन-रात 8.64 अरब वर्ष का होता है। उनका सौ वर्षों का जीवनकाल इतना विशाल है कि इसे किसी कम्प्यूटर द्वारा पूरी तरह से गणना करना सम्भव नहीं है। ब्रह्मा जी की भी मृत्यु होती है; वे भी अपना शरीर त्यागकर श्रीभगवान् में विलीन हो जाते हैं।
ब्रह्माण्ड के विराट स्वरूप में, ब्रह्मा जी का अस्तित्व भी महासागर में एक बुलबुले जैसा है। जब उनका एक दिन ही 4.32 अरब वर्षों का होता है और हमारी अधिकतम आयु केवल सौ वर्ष है, तो इस विशाल ब्रह्माण्ड में हमारा क्या अस्तित्व है?

हम शून्य हैं, लेकिन हम स्वयं को नायक समझते हैं, इसीलिए हम अहङ्कार और ममता में डूबकर दुखी होते हैं। यह कालमान इसलिए दिया गया है ताकि हमें अपनी तुच्छता /अल्पता का भान हो जाए। जब कल्प का क्षय होता है (ब्रह्मा जी का दिन समाप्त होकर रात की ओर जाता है), तो यह जितने भी पिण्ड (सृष्टि की गुड़िया) हमने बनाए हैं, वह सब एक हो जाते हैं। "हे कुन्तीपुत्र! मेरी प्रकृति में समाहित हो जाते हैं (यान्ति मामिका) फिर, कल्प के आरम्भ में (कल्पादौ) मैं(परमात्मा) पुनः उन सभी को सृजित (विसृजाम्यहम्) करता हूँ। इस प्रकार, यह सृष्टि निरन्तर चलती रहती है।

यह भूत समुदाय **अवश** अर्थात् अपने वश में नहीं क्योंकि उनके कर्मों के कारण उनका जीवन-मरण उनके हाथ में नहीं है, बल्कि उन्हें जाना ही है। (they must go)

9.8

प्रकृतिं(म्) स्वामवष्टभ्य, विसृजामि पुनः(फ्) पुनः।
भूतग्राममिमं(ङ्) कृत्स्नम्, अवशं(म्) प्रकृतेर्वशात्।।9.8।।

प्रकृति के वश में होने से परतन्त्र हुए इस सम्पूर्ण प्राणी समुदाय की (कल्पों के आदि में) मैं अपनी प्रकृति को वश में करके बार-बार रचना करता हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान् बताते हैं कि प्रकृति किस प्रकार कार्य करती है? **अवशात्** का अर्थ है कि हमारे वश में नहीं है। जन्म लेना, न लेना, यह हमारे वश में नहीं है। यह प्रकृति श्रीभगवान् के वश में है। श्रीभगवान् कहते हैं, "यह प्रकृति जो मेरे अधीन है या मेरे द्वारा सृष्टि की गई है, मैं उसका अध्यक्ष हूँ। बार-बार सृष्टि की रचना करता हूँ, विलय करता हूँ। जितने भी चौरासी लाख भूतमात्र हैं, उनके वश में जीवन-मरण नहीं है।

9.9

न च मां(न्) तानि कर्माणि, निबध्नन्ति धनञ्जय।
उदासीनवदासीनम्, असक्तं(न्) तेषु कर्मसु।।9.9।।

हे धनञ्जय ! उन (सृष्टि-रचना आदि) कर्मों में अनासक्त और उदासीन की तरह रहते हुए मुझे वे कर्म नहीं बाँधते।

विवेचन- यहाँ पर श्रीभगवान् बता रहे हैं कि "मेरे अन्दर ही सब प्राणीमात्र हैं। मैं ही सभी कर्मो की सृष्टि भी करता हूँ लेकिन आप जो कर रहे हैं, उसमें मैं बँध नहीं जाता। मुझे उससे कोई राग नहीं है। मैं केवल साक्षीभाव से देखता रहता हूँ। सृष्टि मैंने की, मेरी सृष्टि है लेकिन मैं उसमें लिप्त नहीं रहता। आप जो भी कर्म करेंगे, प्रकृति के अनुसार सात्त्विक, राजसिक या तामसिक, वह आप जानें और उसका फल आप जानें। मैं उनमें लिप्त नहीं होता। केवल तटस्थ भाव से देखता रहता हूँ। मैं कुछ नहीं करता, उदासीन रहता हूँ। आप जो भी करेंगे-पाप या पुण्य, आपके कर्म का फल आप ही को मिलेगा, मुझे नहीं मिलेगा। जो आप कर रहे हैं, मुझे उसमें कोई आसक्ति नहीं है।"

तो आसक्ति नहीं होना, यह असक्त भाव है। श्रीभगवान् कहते हैं, "मनुष्य जो भी कर्म करते हैं, उन कर्मो में मेरी कोई रुचि नहीं है। मैं उनमें कभी बँधता नहीं, मैं कभी उनमें लिप्त नहीं होता, उदासीन रहता हूँ।" उदासीन का अर्थ है, तटस्थ भाव। "मैं देखता रहता हूँ बस। लेकिन तुम अच्छा कर रहे हो या बुरा कर रहे हो, उसका लेखा (account) बनाता रहता हूँ।"

उसी लेखा (account) के अनुसार ही हमारा अगला जन्म होता है। श्रीभगवान् कहते हैं, "आपके कर्म के अनुसार ही आपका अगला जन्म होता है, मेरे कारण नहीं।"

9.10

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः(स्), सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय, जगद्विपरिवर्तते।।9.10।।

प्रकृति मेरी अध्यक्षता में सम्पूर्ण चराचर जगत को रचती है। हे कुन्तीनन्दन ! इसी हेतु से जगत का (विविध प्रकार से) परिवर्तन होता है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, "इस सृष्टि को चलाने वाला मैं ही हूँ, इसका अध्यक्ष मैं ही हूँ। मैंने ही प्रकृति को शक्ति प्रदान की है जिससे वह चराचर जगत की सृष्टि करती रहती है। मेरी शक्ति प्रकृति है। मैं प्रत्यक्ष रूप से कुछ नहीं करता।

जिस प्रकार किसी भी संस्थान में अध्यक्ष की देखरेख में अन्य व्यक्तियों द्वारा सारे कार्य चलते हैं उसी प्रकार सृष्टि का सञ्चालन भी मेरे देखरेख में प्रकृति करती है, मैं नहीं करता।

मनुष्य अपने कर्मों के आधार पर इस जगत में घूमते रहते हैं। इसका अर्थ यह है कि मैं अच्छा-बुरा, जो भी कर्म कर रहा हूँ, उसका फल मुझे ही भोगना है और उसे भोगने के लिए मैं अगले जन्म लेता हूँ। जो भी प्रारब्ध कर्म हैं, वे सञ्चित कर्म होते हैं। वे ही जन्म का कारण होते हैं।

यहाँ पर हमको एकबात जानने की आवश्यकता है कि जैसे प्रधानमन्त्री कुछ नहीं करते, वह कराते हैं क्योंकि वह अध्यक्ष हैं। उनके अधीन अनेक राज्यों के मन्त्री अपने राज्यों के कार्य के लिए नियम आदि बनाते हैं। जब कोई कार्य राज्यों के नियन्त्रण से निकल जाता है तो फिर केन्द्र सरकार उसे अपने नियन्त्रण में ले लेती है, उसी प्रकार श्रीभगवान् भी अपने हाथ में ले लेते हैं।

छठे अध्याय में हमने देखा है कि जब जब धर्म का नाश होता है तब श्रीभगवान् अवतार लेते रहते हैं। इस प्रकार कई श्लोक हैं। इस प्रकार श्रीभगवान् के अध्यक्षता में सारे कार्य चलते रहते हैं। श्रीभगवान् ही सब कुछ हैं। श्रीभगवान् के सिवा कुछ नहीं है।

महर्षि पाणिनी के अनुसार प्रकृति जिन चौबीस तत्वों से बनी है, वे सब जड़ हैं। केवल श्रीभगवान् ही चेतन हैं। श्रीभगवान् हमारे अन्दर हैं, तभी तो हम बोल पा रहे हैं। हमें यह शक्ति श्रीभगवान् ने दी। किसी का निधन हो जाता है तो कहते हैं कि शव को बगल में रखो। "मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ, सब श्रीभगवान् करा रहे हैं" यह कर्तृत्त्व भाव छोड़ना है और भोक्तृत्त्व भाव छोड़ना है, तभी श्रीभगवान् दिखते हैं। यदि "मैंने किया- मैंने किया", अहमता-ममता का भाव जब तक है तब तक श्रीभगवान् दिखेंगे नहीं। जब अहमता-ममता का भाव चला जाता है और "श्रीभगवान् ही सब कुछ हैं, मैं जो भी कार्य कर रहा हूँ, उसमें श्रीभगवान् का रूप मैं देख रहा हूँ" यह भाव आता है, तभी हम लोगों को मुक्ति मिलती है नहीं तो हम इसी चक्र में घूमते रहते हैं।
इसी के साथ सत्र समाप्त हुआ तथा प्रश्नोत्तर सत्र आरम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तर

प्रश्नकर्ता - श्रीमती राधा कुमारी दीदी
प्रश्न - द्वैत और अद्वैत का द्वन्द्व हमेशा हमारे में चलता रहता है। गीता जी में कहा गया है कि अन्त में एक ही तत्त्व है । परम् पुरुष जैसे समुद्र और लहरों का जल एक ही होता है। हमारी और अन्य जीवों की आत्मा भी एक ही चैतन्य शक्ति है। मृत्यु के बाद सभी उस परम् तत्त्व में विलीन हो जाते हैं। तो सबका कर्म भी अलग-अलग नहीं हुआ फिर हम अपने-अपने कर्मों में क्यों बँधते हैं? पुनर्जन्म किसका होता है? कर्त्ता कौन हुआ?
उत्तर - एक आत्मा है जो शुद्ध और अविनाशी है, जीव में प्रवेश करने के बाद आत्मा, जीवात्मा बन जाती है और प्रकृति से जुड़कर कुछ क्षणों के लिए अपना अस्तित्त्व भूल जाती है। जीवात्मा में विषयों का विकार आ जाने से वह कर्त्तृत्त्व और भोक्तृत्त्व के कल्मष से लिप्त हो जाती है, इस मैल को हटाने के लिए पुनर्जन्म लेना ही पड़ता है। जब तक यह मैल रहेगा, जीवात्मा आत्मा नहीं बन सकती। मोह से बाहर आने तक जन्म लेते रहना पड़ता है। विषयों या गुणों के विकार के कारण कर्मों का फल भोगना पड़ता है, शरीर तो मात्र एक साधन है। आत्मा और जीवात्मा एक ही है लेकिन जब तक "मैं" और "परमात्मा" एक हैं यह भाव नहीं आ जाता तब तक पुनर्जन्म लेना ही पड़ता है।

प्रश्नकर्ता - श्री लता अमीन भैया
प्रश्न - भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि अधर्म को मारने के लिए शस्त्र उठाना पड़ेगा। दुर्योधन पापी था, अधर्मी था, रावण भी पापी और अधर्मी था, परन्तु उनके सैनिक तो अधर्मी नहीं थे तो उन्हें क्यों मरना पड़ा?
उत्तर - प्रत्येक प्राणी को अपने कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है। रावण या दुर्योधन के कर्म तो दिखते हैं परन्तु सैनिकों के नहीं, उन्हें अपने पिछले जन्मों के कर्मों के फल भोगने पड़े। इसीलिए पितामह भीष्म को भी अधर्मी दुर्योधन का साथ देना पड़ा। सैनिकों ने निष्काम कर्मों से मोक्ष प्राप्त किया।

प्रश्नकर्ता - श्री राघवेन्द्र राव रायलपाड भैया
प्रश्न - यदि आकाश कुछ भी नहीं है तो उसमें वायु कैसे हो सकती है?
उत्तर - आकाश शून्य है, वह इतना सूक्ष्म है कि दिखाई नहीं देता वैसे ही जैसे एक परमाणु भी हमारी सामान्य दृष्टि से नहीं दिखाई देता। इस ब्रह्माण्ड में अनेक भूमण्डल समाए हुए हैं। भूमण्डल केवल हमारी पृथ्वी ही नहीं है अपितु इस ब्रह्माण्ड में जो

कुछ भी समाया है वह भूमण्डल कहलाता है और वायु भी उनमें से एक है। हम वायु को अनुभव तो कर सकते हैं परन्तु देख नहीं सकते। समुद्र तट पर खड़े होकर हम उतना ही समुद्र देख सकते हैं जितनी हमारी आँखों की क्षमता है परन्तु समुद्र तो अथाह और अनन्त है वैसे ही आकाश भी अनन्त है।

प्रश्नकर्ता - श्री राघवेन्द्र राव रायलपाड भैया
प्रश्न - " निबध्नन्ति" शब्द का अर्थ स्पष्ट करें।
उत्तर - "बध्नन्ति" अर्थात् बँधना, राग उत्पन्न होना। किसी बात से इतना मोह हो जाना कि हम उसके बिना रह ही नहीं सकते। जैसे चाय पीने की आदत, यदि चाय नहीं पीते हैं तो चक्कर आते हैं। जब हम विषयों से बँध जाते हैं तो दुःख होता है।
निबध्नन्ति का अर्थ है बँधन मुक्त होना, वैराग्य भाव। विषयों से प्रेम तो होता है परन्तु उनसे राग नहीं होता " "**समोऽहम् सर्व भूतेषु**",
न किसी से द्वेष हो और न ही प्रेम, यही वैराग्य भाव है।

प्रश्नकर्ता - श्री छायापति बी·के·भैया
प्रश्न - मन के तीन दोष बताए गए हैं जिनमें से एक विक्षेप है, मन की चञ्चलता। जिसे वश में करना कठिन है। मन को नियन्त्रित कैसे करें?
उत्तर - मन चञ्चल होता है और अत्यधिक बलवान भी। उस पर नियन्त्रण कैसे हो? यही प्रश्न अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पूछा था

चञ्चलं हि मन: कृष्ण, प्रमाधि बलवद्दढ़ं।
तस्याहं निग्रहों चश्मे, वायोरिव सुदुष्करम्।।6·34।।

इस पर श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया

असशंयम् महाबाहो, मनोदुर्निग्रहं चलं।
अभ्यासेन तु कौतेय, वैराग्येण च गुह्यते।। 6·35।।

किसी भी साधना के लिए अभ्यास आवश्यक है। मन तो चञ्चल है ही, यहाँ-वहाँ भागता रहता है, जैसे कि एक बालक को प्रेम पूर्वक पास बुलाया जाता है, मन को भी वैराग्य के अभ्यास से वश में कर सकते हैं जिससे मन विचलित नहीं होता। हाथी बलवान होता है परन्तु माहावत उसे प्रेम से या अङ्कुश से वश में कर सकता है, मन तो हाथी से भी अधिक बलवान है तो उसे नियन्त्रित करने के लिए अधिक अभ्यास की आवश्यकता होगी।

राग से दुःख होता है। हम सिनेमा देखते हुए उसके पात्र से बँध जाते हैं, उसके दुःख में दुखी होते हैं और वह प्रसन्न हो तो हम भी प्रसन्न होते हैं यह जानते हुए भी कि वह सिनेमा का पात्र है। धृतराष्ट्र ने पुत्र मोह में पड़कर अपना सर्वनाश किया। यदि वे पाण्डु पुत्रों को भी अपना मानते और दुर्योधन को समझाते तो महाभारत नहीं होता।

प्रश्नकर्ता - श्रीमती विद्या दामले दीदी
प्रश्न - कहते हैं कि मृत्यु के बाद आत्मा के साथ पाँच इन्द्रियाँ और एक मन भी साथ जाता है। आत्मीय जनों से बिछड़ने की वेदना से कैसे मुक्त हो सकते हैं?
उत्तर - जिसे हम अपना समझ रहे हैं वह अपना है ही नहीं इसलिए वेदना भी नहीं है। यही वैराग्य भाव है।
मन भी एक इन्द्रिय है जो ज्ञानेन्द्रीय का मालिक है।
अगले जन्म में केवल कारण शरीर जाता है, मन नहीं। भोक्तृत्व भाव से पीड़ा होती है ऐसा हम समझते हैं। पीड़ा मन को होती है और मन शरीर नहीं है।
हमारी स्थिति **आनन्द** है जिसका कोई विपरीत शब्द नहीं है जबकि सुख के विपरीत दुःख होता है, सुख प्रकृति की स्थिति है जो बदलती रहती है। वेदना क्षण भर के लिए होती है लेकिन जितनी शीघ्रता से हम मन को उसकी वास्तविक स्थिति आनन्द में ला सकते हैं उतनी वेदना कम होगी, यह अभ्यास द्वारा ही सम्भव है। इससे हम श्रीभगवान् के समीप आ सकते हैं।
हम कौन हैं यह हम समझ नहीं पा रहे हैं। "अहं ब्रह्मास्मि, हम श्रीभगवान् का ही अंश हैं,जब यह समझ जाएंगे तो दुःख नहीं

होगा।
आत्मा को दुःख नहीं होता क्योंकि वह निर्लिप्त है। जीवात्मा को वेदना होती है इसीलिए पुनर्जन्म होता है

प्रश्नकर्ता - श्रीमती सरोज अग्रवाल दीदी
प्रश्न - जब सब कुछ प्रभु ही करते हैं तो हम अपने कर्मों का फल क्यों भोगते हैं?
उत्तर - यह कहना गलत है। प्रभु कुछ नहीं करते, वे हमसे कर्म करवाते हैं और स्वयं साक्षी भाव से देखते हैं।
श्रीभगवान् ने सृष्टि का सृजन किया है और हमें कर्म करने की शक्ति दी है। अब यह हम पर निर्भर करता है कि हम उस शक्ति का प्रयोग अच्छे कर्मों के लिए करते हैं या बुरे कर्मों के लिए।
भगवद्गीता में अर्जुन को उपदेश देने के बाद अन्त में श्रीकृष्ण कह देते हैं कि "**यथेच्छसि तथा कुरु**"
मैंने तो तुम्हें मार्ग बता दिया है अब तुम जैसा चाहो वह मार्ग अपना सकते हो।
विद्युत शक्ति का प्रयोग विभिन्न उपकरणों के सञ्चालन के लिए भी कर सकते हैं और उसके दुरुपयोग से मृत्यु भी हो सकती है, इसके लिए विद्युत विभाग उत्तरदाई नहीं हो सकता। हम एक दीपक को तेज बहती हवा में रखकर बिना प्रयास किए श्रीभगवान् से अपेक्षा करें कि वे उसकी रक्षा करें तो यह तो सम्भव नहीं है, हमें पहले उसकी रक्षा का प्रयास करना होगा तभी श्रीभगवान् हमें आशिर्वाद देंगे।
सभी कार्यों में ईश्वर को देखेंगे और निष्काम भाव से कर्म करेंगे तो कर्तृत्त्व और अहङ्कार नहीं होगा और हमें उन कर्मों का फल भोगना नहीं पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता - श्रीमती अरुणा दीदी
प्रश्न - कर्म फल से मुक्त होकर ही मोक्ष प्राप्त होगा लेकिन हमें अपने पिछले जन्म के कर्म याद नहीं रहते तो उनका निवारण कर कैसे हम मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं?
उत्तर - भूलना एक वरदान है। स्मृति को साथ ले जाना एक श्राप है क्योंकि उससे मन विचलित होता है।
हमें यह जानने की आवश्यकता भी नहीं है क्योंकि श्रीभगवान् को सब पता है। चित्रगुप्त हमारे कर्मों का हिसाब रखते हैं और उन्हीं के अनुसार हमारी प्रवृत्ति सात्त्विक, राजसी तामसी होती है। हम देखते हैं कि छोटे छोटे बालक गीता जी कण्ठस्थ करते हैं और गीताव्रती बनते हैं, उन्हें उन श्लोकों का अर्थ भी नहीं समझता। यह उनके पिछले जन्म के कर्मों से ही सम्भव हो सकता है। हम जो कर्म इस जन्म में कर रहे हैं वे हमारे पूर्वजन्म के सञ्चित कर्मों पर ही आधारित हैं।

सञ्चित कर्म परिपक्व होकर प्रारब्ध कर्म कहलाते हैं जो समाप्त हो जाते हैं, परन्तु हमारे नित्य कर्म सञ्चित कर्मों में परिवर्तित होते रहते हैं। इस जन्म में अच्छे कर्म करने से हमारा पाप कम होगा और पुण्य बढ़ेगा।
श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा भी है कि तुम युद्ध करो जो तुम्हारा निहित कर्म है, विजयी होने पर राज्य का उपभोग करोगे नहीं तो स्वर्ग प्राप्त करोगे, तुम्हें पाप नहीं लगेगा क्योंकि तुम शास्त्रोक्त धर्म युद्ध कर रहे हो।
मानव जन्म में ही हम अपने कर्मों को सुधार सकते हैं।

प्रश्नकर्ता - श्री प्रदीप्त त्रिपाठी भैया
प्रश्न - पुराणों में स्वर्ग प्राप्ति को केन्द्र माना गया है जबकि भगवद्गीता में मोक्ष प्राप्ति को, इसे स्पष्ट करें।
उत्तर - स्वर्ग का अर्थ है सुख। पाताल से ब्रह्म लोक तक चौदह लोक हैं जिनमें सातवाँ लोक पृथ्वी है। चौदह लोकों का भी अपना ही एक स्वर्ग होता है जहाँ से पुण्य समाप्त होने पर लौटकर आना ही पड़ता है। ब्रह्म लोक भी सौ वर्ष बाद प्रलय में विलीन हो जाता है।
मोक्ष का अर्थ भी स्वर्ग प्राप्त करना है अर्थात् जहाँ से लौटकर नहीं आना है।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let’s come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||